E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 2, Issue- 2 | February 2025

भाषा विचार और राजनीतिक भविष्य

डॉ. गौरी सिंह परते
सहायक प्राध्यापक राजनीति विज्ञान
शासकीय महाविद्यलय जिला–डिन्डौरी (म.प्र.)

सारांश

किसी भी देश में उसकी भाषा के संरक्षण और विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसी भाषा में सरकार कार्य करे और सभी सुविधाओं को भी उसी भाषा में प्राप्त किया जा सके। इस कारण हर देश में आधिकारिक भाषा चुना जाता है। जिससे उसी भाषा में सरकार कार्य कर सके। यह भाषा उस देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली, समझी जाती है या उस देश में निर्मित भाषा होती है। लेकिन कुछ देशों में एक से अधिक भाषाओं के बोले और समझे जाने व कई भाषाओं का जन्म स्थान होने के कारण आधिकारिक भाषा चुनने में समस्या उत्पन्न होती है। यदि कोई ऐसे देश की सरकार अपने देश की किसी भाषा को आधिकारिक भाषा बना ले तो विपक्ष में, मुख्य रूप से दूसरे भाषी क्षेत्रों में रहने वाले राजनीतिक दल इसका विरोध करते हैं। जिससे दूसरे भाषी लोग विपक्ष को आने वाले चुनाव में मत दे सकें। अपने चुनावी कार्यक्रमों में भी इसे ही मुद्दा बनाते हैं, जिससे इस बात को कोई न भूले और मुद्दे को और भी गंभीर बनाया जा सके।

प्रस्तावना :– भारतीय सामाजिक संरचनान्तर्गत विविधता में एकता का एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व भाषा है, इसलिए भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया का राजनीतिक संस्कृति के निर्माण एवं निरूपण की दृष्टि से काफी महत्त्व है। भाषा को देश में सामाजिक संचार का महती माध्यम माना गया है। भारत बहुल संस्कृति वाला देश है, ऐसे में भाषा का राजनीतिक दृष्टि से महत्त्व और भी बढ़ जाता है। भाषा मानव अभिव्यक्ति का सबसे सषक्त माध्यम है। इसलिए सभी देषों की अपनी एक राष्ट्रभाषा होती है। जब किसी भी राजनीतिक व्यवस्था की राजनीति का विश्लेषण किया जाता है तो राजनीति पर भाषा के प्रभावों की विवेचना किये बिना विश्लेषण पूरा नहीं होता है। जहां तक भारत की राजनीति का सवाल है तो यथार्थतः यहां उत्तर भारत और दक्षिण भारत के बीच राजनीतिक संस्कृति के निर्माण–निरूपण की दृष्टि से मतदान व्यवहार में जो भिन्नता पायी जाती है, उसके मूल में दोनों क्षेत्रों के बीच भाषा की भिन्नता है। भारतीय राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीयतावाद के संदर्भ का एक मुख्य पहलू भाषावाद भी है। आजाद भारत के सामने एक अहम् सवाल था कि देश की राष्ट्रभाषा और उसकी लिपि क्या हो तथा देश के संवैधानिक राजनीतिक ढाँचे में भाषायी अल्पसंख्यकों को किस प्रकार का संरक्षण प्रदान किया जाय जिससे कि वे अपने आपको सुरक्षित महसूस कर सकें। संविधान द्वारा हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित करने की बात हुई तो दक्षिण भारतीय हिन्दी भाषा का जबर्दस्त विरोध करने लगे। दक्षिण भारतीयों का ये कहना था कि वे हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे।

भाषा की अवधारणा :– भाषा जीवित प्राणियों के भाव प्रकाशन का एक मुख्य साधन है। मनुष्य जिस माध्यम से अपने विचारों एवं भावों को अभिव्यक्त करता है या आदान–प्रदान करता है, इस प्रक्रिया को ही भाषा कहा जाता है। भाषा भाव, विचार तथा अनुभवों को व्यक्त करने और विचार विनिमय करने का एक प्रमुख साधन है। इस संसार में रहने वाले विभिन्न प्राणी विभिन्न प्रकारों से अपने भावों और विचारों को व्यक्त करते हैं। व्यक्ति अपने पास उपलब्ध साधनों जैसे– हाथ, पैर ,कान सिर, कान आदि से अपने मन की इच्छाओं को व विचारों को समक्ष प्रकट करते हैं। साथ ही हम कह सकते हैं कि अंग–प्रत्यंग के संचालन से भी भावों की अभिव्यक्ति संभव है। अपनी भावनाओं को व्यक्त करने हेतु व्यक्ति जिन व्यक्त ध्वनि संकेतों को नित्य–व्यवहार के लिए स्वीकार करता है, उसे भाषा कहा जाता है। भाषा

विचारों को व्यक्त करने वाली ध्वनियों और वाक्यों का एक समुदाय होता है। स्वयं को व्यक्त करने हेतु मनुष्य ध्वनि संकेतों तथा अंग–प्रत्यंगों के संचालन का आश्रय लेता है,यही भाषा के अंतर्गत आता है। भाषा के बिना मनुष्य का जीवन अंधकार में रहता है। भाषा के ज्ञान से मानव का जीवन–मार्ग प्रकाशमय हो जाता है। भाषा के उचित प्रयोग के माध्यम से मनुष्य के जीवन में चार चाँद लग जाते हैं।''[1]

भाषा की राजनीति :– भाषा को किसी जाति और संप्रदाय से जोड़कर देखने वाले देश के नेताओं और राजनीतिक दलों को देश के ही अलग–अलग राज्यों में भाषा को बचाए रखने के लिए जद्दोजहद कर रहे लोगों की चिंता कभी दिखाई नहीं देती। कभी हिंदी तो कभी संस्कृत, उर्दू, मराठी, बांग्ला के नाम पर अपना राजनीतिक वोट बैंक बनाने में लगे ये नेतागण जमीनी तौर पर कभी भी संजीदा दिखाई नहीं देते।भाषा के प्रति उदासीनता सिर्फ व्यक्ति विशेष तक होती तो इसे व्यक्तिगत करार दिया जा सकता था लेकिन इससे इतर भी आपको कई ऐसे उदाहरण मिल जाएंगे। दक्षिण भारत के मैसूर शहर में सुभरमा नाम से एक अखबार छपता है। इस अखबार की खासियत ये है कि ये संस्कृत भाषा को आज भी आम लोगों तक ले जा रहा है। संस्कृत जो कई भाषाओं की जननी है और आज अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही है,देश में 1968 में त्रिभाषा फॉर्मूला की बात की गई थी, इसके तहत स्कूलों में बच्चों को कम से कम तीन भाषाएं पढ़ाए जाने की बात थी। इनमें हिंदी, अंग्रेज़ी और एक स्थानीय भाषा पढ़ाए जाने पर जोर दिया गया था। आज़ादी के बात भारत की अनेकता को देखते हुए देश के शिक्षाविदों ने त्रिभाषा फॉर्मूला दिया था ताकि ना तो भाषाएं खत्म हों और ना ही कहीं भी कम्यूनिकेशन से जुड़ी समस्याएं आएं। लेकिन आज हालात ये हैं कि अभी भी राजनीतिक दल समय–समय पर इस फॉर्मूले को लागू करने की ज़रूरत पर सिर्फ बहस करते नज़र आते हैं। अगर भाषा को लेकर सचमुच संजीदगी होती तो राजनीतिक दल और नेता त्रिभाषा फॉर्मूला लागू करने को लेकर सोचते। इस फॉर्मूले की वजह से तमाम मुस्लिमों ने हिंदी भाषा की पढ़ाई की और हिंदुओं ने उर्दु की तालीम हासिल की, ताकि रोजगार के ज्यादा से ज्यादा अवसर मिलें।''[2]

स्वतंत्र भारत में भाषा के आधार पर राज्यों के अस्तित्व–निर्माण एवं पुनर्गठन की प्रक्रिया आरंभ हुई। एक क्षेत्र विषेष के भारतीयों द्वारा भाषा का इस्तेमाल राजनीतिक हथियार के रूप में करने की प्रवृत्ति धीरे–धीरे बढ़ती गयी। राष्ट्रभाषा के सवाल को लेकर दक्षिण भारत और उत्तर भारत के राज्यों में आन्दोलन हुए जो धीरे–धीरे हिंसात्मक रूप अख़्तियार करने लगा। राष्ट्रीय एकता–अखण्डता को अक्षुण्ण बनाये रखने के मार्ग में भाषागत आन्दोलन एक ताकतवर अवरोधक के रूप में खड़ा हो गया। वस्तुस्थिति यह थी कि दक्षिण भारत में हिन्दी का जबर्दस्त विरोध हुआ, बंगालवासियों ने उनसे थोड़ा कम विरोध किया और देश के अन्य हिस्सों में बसने वाले शिक्षित समुदायों द्वारा भी भाषागत आधार पर सीमित रूप में हिन्दी का विरोध किया गया। यदि असम के राजनीतिक आन्दोलन की बात करें तो यह सत्य है कि सभी असम आन्दोलनों की प्रेरणा का स्रोत वहां मौजूद भाषा की राजनीति है। पिछले कुछ समय से महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के अध्यक्ष राज ठाकरे जिस तरह राष्ट्रीय भावनाओं को आहत करने वाली गतिविधियों का केन्द्र बने हुए हैं, उसका मूल आधारतत्त्व मराठी भाषा के आधार पर मराठियों में उत्तर भारतीय संस्कृति से पृथक्ता की प्रवृत्ति पैदा कराना है। अराजकता को आधार बनाकर राजनीति करने वाले राज ठाकरे द्वारा जो भाषागत राजनीति का गंदा खेल शुरू किया गया है उसपर स्वर्गीय बाल ठाकरे का प्रभाव एवं उद्धव ठाकरे की भी संलिप्तता भी दिखाई देती है। मुंबई नगरपालिका के कामकाज में हिन्दी को भी जगह देने की साधारण सी मांग पर उनके द्वारा भाषागत आधार पर जो विष वमन किया गया, उसकी कोई जरूरत नहीं थी। क्या यह मांग उठाना एक भारतीय के लिए गंभीर

अपराध है। यदि भाषा के सवाल पर भारत के किसी एक राज्य में कुछ असंगत घटनाएं हुईं बाल ठाकरे तमिलनाडु का हवाला देते हुए बयानबाजी करते थे और ऐसे लोगों को जेल भेजने की बात करते थे।''[3]

भारतीय संविधान में भाषा का स्थान :– भारतीय संविधान द्वारा स्पष्टीकरण के बावजूद राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार करने के नाम पर मुखर विरोध का स्वर आज भी जिन्दा है और भाषागत राजनीतिक मंच आज भी अपनी जगह मजबूती से खड़ा है। भारतीय संविधान की अनुसूची 8 में 14 भाषाएं शामिल थीं, जिसमें 21वें संशोधन, 1967 द्वारा सिंधी को जोड़ा गया, 71वें संशोधन, 1992 में नेपाली, कोंकणी और मणिपुरी को आठवीं अनुसूची में जोड़ा गया और 92वें संशोधन 2003 द्वारा बोडो, डोंगरी, मैथिली और संथाली भाषा को आठवीं सूची में शामिल किया गया। अब तक कुल मिलाकर भारत में 22 भाषाओं को संवैधानिक स्वीकृति प्रदान की गयी है। संविधान के भाग 17 की धारा 343 के तहत यह स्पष्ट किया गया है कि संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी विषेष निर्देष के रूप में अध्याय की धारा 351 में हिन्दी भाषा के विकास के लिए आवश्यक निर्देष की बात की गयी है। संविधान की यह धारा स्पष्ट करती है कि संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा के प्रसार में वृद्धि करे, उसका विकास करे ताकि यह भाषा भारत की सामाजिक संस्कृति के सभी तत्त्वों–आयामों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और क्षेत्रीय भाषाओं की प्रकृति में हस्तक्षेप किये बिना आठवीं सूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप शैली और पदों को आत्मसात् करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करें।''[4]

भाषा एवं राजनीति का सामान्जस :– भारत में भाषा एवं राजनीति की अन्योन्यक्रियाओं के ख़ास बिन्दु उपरोक्त संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भाषा और राजनीति की अन्योन्यक्रिया के परिणामस्वरूप यदाकदा क्षेत्रीयतावाद से संदर्भित भाषा–विवाद का मुद्दा भारतीय राजनीतिक परिदृष्य में उबाल लाने में महती भूमिका निभाता रहता है। इस प्रसंग में मॉरिस जोन्स का कथन काफी प्रासंगिक है। इनके अनुसार क्षेत्रीयता और भाषा के प्रश्न भारतीय राजनीति के इतने ज्वलंत प्रश्न है और भारत में हाल में घटित राजनीतिक घटनाओं के साथ इनका इतना गहरा संबंध रहा है कि इससे यों प्रतीत होता है जैसे राष्ट्रीय एकता की सम्पूर्ण समस्या यही है। भाषा और राजनीति की अन्तः क्रियात्मकता को कुछ खास बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है:

1. हिन्दी भाषा के विरोध की राजनीति–भारत के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी भाषा के विरोध में निरन्तर प्रदर्शन–आन्दोलन की राजनीति अपनायी जाती रही है। यदा–कदा ये आन्दोलन कारी उग्र रूप धारण करके हिंसात्मक वारदातों को अंजाम देते हैं। उदाहरणार्थ, दक्षिणी प्रान्तों में स्वंतत्रता–प्राप्ति के बाद से हिन्दी भाषा के विरुद्ध उग्र विरोध प्रदर्शन करते रहने का लम्बा इतिहास रहा है। वर्तमान समय में राज ठाकरे के नेतृत्व में मुंबई में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के कार्यकताओं की भूमिकाओं से हिन्दी विरोध का उग्र रूप सदैव सामने आता रहता है, जिसकी वजह से महाराष्ट्र से बड़े पैमाने पर उत्तर भारतीयों का पलायन होता रहता है। देश में कई प्रान्तों की विधान सभाओं द्वारा हिन्दी के विरुद्ध क्षेत्रीय भाषा को राजकीय भाषा का दर्जा प्रदान करने के लिए अधिनियम पारित किया गया है।

2. भाषागत आधार पर राज्यों का पुनर्गठन–स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् 1956 में हुए राज्यों के पुनर्गठन में भाषा को विशेष तरजीह दी गयी, इसके मूल में तेलुगू नेता पोट्टी श्री रामुलु द्वारा भाषा आधारित राज्यों की पुनर्गठन की मांग के लिए किये गये आन्दोलन में हुई मृत्यु की घटना को देखा जाता है। इस घटना ने पंडित नेहरू को भाषा आधारित राज्यों के निर्माण और पुनर्गठन पर गंभीरता से

सोचने के लिए विवष कर दिया। पंजाब, बम्बई व असम आदि राज्यों का पुनर्गठन इसी आधार पर किया गया था। महाराष्ट्र, गुजरात, हरियाणा एवं चंडीगढ़ आदि के निर्माण का आधार भी मूलतः भाषा ही था।''[5]

3. भाषायी दबाव समूहों का आविर्भा व–भाषायी विरोध और समर्थन के आधार पर देश के विभिन्न हिस्सों में जन्मे भाषायी समूह धीरे–धीरे अपने समाज का समर्थन प्राप्त करके मजबूत व प्रभावषाली दबाव समूहों में तब्दील हो गये और केन्द्र तथा राज्य सरकार पर अपनी बात मनवाने के लिए दबाव बनाने लगे। इससे देश के अलग–अलग हिस्सों में भाषायी राजनीतिक मंच का अभ्युदय हुआ जो समय के साथ क्षेत्रीय राजनीति में मजबूती से अपने पाँव जमाता गया और अपने–अपने क्षेत्र की राजनीति की दिशा–दशा तय करने में निर्णायक भूमिका निभाने लगा। कई प्रदेशों में तो ये दबाव समूह क्षेत्रीय राजनीतिक दल का चोला पहन कर समय–समय पर अपनी प्रान्तीय राजनीति में अपनी स्थिति को मजबूत बनाने के लिए प्रयासरत दिखाई देते हैं। इसके एक खांस नमूनों के रूप में महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना और उसके नेता राजठाकरे को नित्य नये मुद्दों पर अपनी आवाज बुलंद करके अपनी राजनीतिक हैसियत के नवीनीकरण के लिए गंभीर रूप से प्रयास करते देखा जा सकता है।

4. एक चुनावी मुद्दे के रूप में भाषा का राजनीतिकरण–आज भारत के कई प्रान्तों में लोकसभा एवं विधानसभा के चुनावों में भाषा एक चुनावी मुद्दे की शक्ल में अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। चुनाव में भाषा के राजनीतिकरण का खेल ज्यादातर उर्दू भाषा को लेकर खेला जाता है। मिश्रा सरकार द्वारा यह निर्णय संविधान की धारा 345 के आलोक में लिया गया था। जहां तक उत्तर और दक्षिण भारत के बीच भाषायी भिन्नता का सवाल है तो 1989 के लोकसभा चुनाव में भ्रष्टाचार के आरोपों के बावजूद श्री राजीव गांधी को दक्षिण भारत में सिर्फ इसी आधार पर प्रचंड बहुमत मिला, क्योंकि दक्षिण भारतीय मतदाता वी.पी. सिंह को हिन्दी भाषी राज्यों के प्रधानमंत्री के उम्मीदवार के रूप में देख रहे थे और कहीं न कहीं उनके अन्दर ये आशंका चल रही थी कि शायद वी.पी. सिंह की सरकार संवैधानिक प्रावधानों के तहत हिन्दी को देश की राष्ट्रभाषा का कानूनी अधिकार प्रदान कर देगी। इस प्रकार, लोकसभा और राज्यों की विधानसभाओं के चुनाव में भाषा एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक मुद्दा बन कर सामने आ रही है।''[6]

भाषा के राजनीतिक लक्ष्य :– असुरक्षा के भाव से पीड़ित शासक वर्ग ने मराठी, तेलुगू, गुजराती, पंजाबी, बांग्ला, कश्मीरी आदि भाषायों के शब्द हिंदी में आत्मसात कर उसे अधिक स्वीकार्य बनाने की प्रक्रिया बाधित की। डॉ. भीमराव आम्बेडकर ने अपनी उच्च शिक्षा अंग्रेजी माध्यम से पूरी की लेकिन उनकी राजनीतिक चेतना भारत जैसे देश में अंग्रेजी के प्रचार–प्रसार की पक्षधर नहीं थी। ब्रिटिश शासनकाल में लगभग संपूर्ण भारतीय राजनैतिक नेतृत्व की शिक्षा–दीक्षा अंग्रेजी माध्यम से हुई थी और डॉ. आम्बेडकर इसके अपवाद नहीं थे। उस दौर में भारतीय नेतृत्व के समक्ष दो चुनौतियां थीं, शासकों से अंग्रेजी में संवाद करना और स्कूली शिक्षा से भी वंचित करोड़ों देशवासियों को उनकी भाषा में संबोधित करना। गांधी, भाषा को लेकर स्पष्ट थे। वे गुजराती थे लेकिन हिन्दी के पक्षधर थे और लोगों को हिंदी में संबोधित करते थे। यदि गांधी अंग्रेजी में भाषण देते तो शायद उनकी देशव्यापी स्वीकार्यता नहीं बन पाती। भारतीय संदर्भ में भाषा के प्रश्न को दो कालों में विभाजित कर देखा जाना चाहिए, ब्रिटिश शासनकाल और स्वतंत्र भारत। भारत की स्वतंत्रता के बाद सत्ताधारियों पर दबाव था कि शासकीय कार्य भारतीय भाषाओं में संपन्न किये जायें और इन भाषाओं के माध्यम से ही पठन–पाठन की व्यवस्था हो। यानी सत्ता का ढांचा तो अंग्रेजी–परस्त था, लेकिन नेतृत्व पर दबाव था कि वह भारतीय भाषाओं में सुने और बोले और यह जान ले कि देर–सबेर उसे अंग्रेजी को त्यागना होगा। राजनीतिक

परिवर्तन का सार इसमें निहित होता है कि सत्ता का रूपांतरण, जन के अनुरूप हो सके। सत्ता चाहती है कि नेतृत्व को अपने रूप में ढाल ले। राजनीति के इस द्वन्द्व को समझना महत्वपूर्ण है। सत्ता के जन के अनुरूप रूपांतरण में यह भी निहित है कि शासक वर्ग, लोगों की चेतना की भाषा को समझने के लिए मजबूर हो। इसीलिए अगर किसी भाषा को चुना जाता है तो वह उसकी लिपि के कारण नहीं होता बल्कि वह सत्ता के राजनीतिक–सामाजिक–आर्थिक आधार से जुड़ा होता है।''[7]

भारतीय राजनीति में भाषा :– भारतीय राजनीति के अनेक निर्धारक तत्वों में से एक भाषा भी है। भारत एक बहुभाषी देश है। यहां अनेक भाषाएं एवं बोलियां बोली जाती हैं इनमें से 22 भाषाएं संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल की गई हैं। भाषा लोगों के बीच में संचार का प्रमुख साधन है। भाषा की विविधता भारतीय समाज की अनूठी विरासत है किंतु यही विशेषता तब संकट बन जाती हैं जब यहां पर बोली तथा लिखी जाने वाली अनेक भाषाओं के कारण लोगों के मध्य द्वेष उत्पन्न होता है। ध्यातव्य है कि 1950 से 1960 के बीच राजनीति का प्रमुख मुद्दा भाषा ही था।

भाषागत आधार पर संकुचित भावनाएं, दबाव गुटों का उद्‌भव और भाषा के आधार पर राज्यों की मांग तथा राजनीतिक आंदोलन राष्ट्रीय एकता के लिए संकट उत्पन्न करते हैं भाषाई आधार पर समस्त विवादों के निवारण के लिए एक ऐसी संपर्क भाषा की जरूरत है जो कि विभिन्न भाषा भाषी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांध सकें।राजनीतिक एकता के साथ–साथ भाषा की एकता लोकतंत्र के लिए जरूरी है।''[8]

भारतीय राजनीति में भाषा की भूमिका :– भाषागत होना कोई नकारात्मक नहीं है यद्यपि भाषागत विविधता से एकता बढ़ाने में थोड़ी समस्या होती हैं किंतु यदि एक ऐसे संपर्क भाषा हो जो विविध भाषा भाषी लोगों को एक सूत्र में बांधे रखें तो यह समस्या आसानी से दूर हो सकती है, किंतु ऐसा हुआ नहीं और भाषा का प्रश्न राजनीति का प्रश्न बन गया। भाषा को आधार बनाकर राजनीतिक दलों एवं राजनीतिकारों ने सामान्य जनता को भी उत्तेजित करने का प्रयास किया और स्थिति ऐसी उत्पन्न हो गई कि ऐसा अनुभव होने लगा कि कहीं भाषा का प्रश्न हमारी राष्ट्रीय एकता को खंडित ना कर दे।भाषा भारतीय राजनीति में निम्नलिखित प्रकार से भूमिका निभाती है–

1. भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन–भाषा राजनीति में अहम भूमिका निभाती है जिसका प्रभाव हमें स्वतंत्रता के बाद से ही देखने को मिल रहा है सन 1952 में तेलुगु भाषी लोगों में प्रथक तेलुगु भाषा राज्य के लिए आंदोलन तीव्र हो गया और यह आंदोलन इतना तीव्र था कि प्रधानमंत्री नेहरु को भाषा के आधार पर राज्यों का निर्माण करना पड़ा।

2. हिंदी भाषा विरोधी राजनीति–भारतीय संविधान निर्माण के समय से ही हिंदी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में प्रतिस्थापित करने पर राजनीति चल रही है। उस समय लोगों का कहना था कि अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी को प्रतिस्थापित करने में जल्दी करने का तात्पर्य होगा अहिंदी भाषा जनता पर हिंदी थोपना। संविधान निर्माताओं ने तब यह निर्णय लिया कि जब तक हिंदी पूर्णता विकसित नहीं हो जाती सरकारी भाषा के रूप में अंग्रेजी ही प्रयुक्त होगी और भारत सरकार हिंदी भाषा के विकास एवं विस्तार के लिए कार्य करती रहेगी।''[9]

3. राज्यों में भाषाई विवाद–भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन होने के बावजूद राज्यों के अंतर्गत एवं सीमा पर भाषाएं विवाद देखने को मिलता है जैसे–महाराष्ट्र और कर्नाटक सीमा पर स्थित बेलगांव, असम में बंगाली और असमी भाषा को लेकर भी हमेशा उग्र विवाद देखने को मिलते हैं राजनीतिक दल इसका लाभ उठाने के लिए ऐसे विरोध को और उग्र कर देते हैं।

4. अन्य भाषाओं की मान्यता की राजनीति–हमारे संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 प्रमुख भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है उसके बावजूद मांग थमी नहीं, यह दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है लोग कई क्षेत्रीय भाषाओं को आठवीं अनुसूची में शामिल करने की मांग कर रहे हैं जैसे–भोजपुरी, मंडारी आदि।

5. भाषाई अल्पसंख्यकों की राजनीति–भाषाई आधार पर अनेक राज्यों के निर्माण के बावजूद भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या भी वैसी ही बनी हुई है। यह अल्पसंख्यक वर्ग अनेक प्रकारों से अपने भाषाई संरक्षण की मांग कर रहे हैं जैसे–उत्तर प्रदेश और बिहार में उर्दू, कर्नाटक में मराठी, पंजाब में हिंदी आदि राज्यों में भाषाई अल्पसंख्यकों की समस्या विद्यमान है और यह यहां स्थानीय राजनीति में अहम भूमिका निभाती है।

6. भाषा के आधार पर मतदान व्यवहार–भारत में मतदान व्यवहार भी भाषा के आधार पर किया जाता है लोग उसी पार्टी को मत देते हैं जो उनकी भाषा से संबंधित हो या उनकी भाषा की उन्नति के संबंध कार्यरत हैं।''[10]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भाषा संबंधी विवाद ने भारत की राष्ट्रीय एकता को दुष्ट प्रभावित किया है और इसने देश के समक्ष प्रशासनिक समस्या भी उत्पन्न ने की है।ऐसे अनेक अवसरों पर राजनीतिक दलों ने भाषा की समस्या से राजनीतिक लाभ उठाने की प्रयत्न किए और वर्तमान में भी ऐसी प्रवृत्ति देखी जा रही है।

निष्कर्ष :– भारत में राजनीतिक प्रक्रियाओं के परप्रेक्ष्य में राजनीफत और समाज की अन्योन्यक्रियाओं के विश्लेषणपरक अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि भारतीय राजनीति को नया आयाम व नई मजबूती प्रदान करने में समाज के सभी पक्षों की भूमिका काफी प्रासंगिक है। जाति, धर्म, साम्प्रदायिकता, क्षेत्रीयता, भाषा और वर्ग को राजनीति और समाज की अन्योन्यक्रियाओं के प्रमुख तत्त्वों के रूप में चिन्हित किया गया है। वस्तुतः भारतीयव्यवस्था, में राजनीतिक प्रक्रियाएं एवं राजनीतिक व्यवहार का मूल आधारतत्त्व है सामाजिक पर्यावरण, सामाजिक गतिविधियां एवं सामाजिक व्यवहार। भारत के राजनीतिक विकास एवं आधुनिकीकरण में सामाजिक संरचनाओं का योगदान काफी महत्त्वपूर्ण है। स्वाधीनता संघर्ष से लेकर 67वर्षों के आजाद भारत की राजनीति के स्वरूप–निर्धारण में यहां के समाजिक कारकों–परिवत्र्यों की भूमिकाएं काफी प्रासंगिक रही हैं। सामाजिक परिवत्र्य ही राजनीतिक परिवत्र्यों के स्वरूप का निर्धारक होता है। यही वजह है कि भारत की राजनीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन किये बगैर कोई भी राजनीति शास्त्रवेत्ता भारतीय राजनीति का तत्त्वमीमांसित अध्ययनकर्ता नहीं हो सकता है। यहां की राजनीति की प्रकृति–प्रवृत्ति को समझने के लिए प्रासंगिक सामाजिक आयामों की गहन जानकारी रखना अति आवश्यक है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भारत का बहुल समाज ही भारतीय राजनीति की रीढ़ है। इसीलिए कहते हैं कि यहां की राजनीति को समझने की मास्टर चाबी यहां के समाज में निहित है।

संदर्भ सुची :–

1. शिवराज आत्माराम : हिन्दी राष्ट्र भाषा के रूप में विकास, आत्माराम पब्लिकेशन्स 1970, पृ. 91,
2. वही, पृ. 193
3. गोपाल राय : हिन्दी भाषा का विकास, राजकमल प्रकाशन 2021, पृ. 123,
4. डॉ. सूर्यकांत बाली : भारत की राजनीति के महाप्रश्न, वाणी प्रकाशन 1995,'पृ. 214,
5. राजीव भाठी : राजनीति विज्ञान, एस बी पी डी पब्लिकेशन्स पृ. 110
6. रामविलाष शर्मा : भाषा और समाज, राजकमल पब्लिकेशन्स 2008, पृ. 56,
7. शशि शर्मा : राजनीतिक समाजशास्त्र की रूपरेखा, पीएचआई लरनिंग प्राइवेट पब्लिकेशन्स 2015, पृ. 140,
8. डॉ. जे सी. जोहरी : भारतीय राजनीति एवं शासन, एसबीपीडी पब्लिकेशन्स 2021, पृ. 98,
9. सुभाष कश्यप : भारतीय राजनीति और संसद, राजकमल प्रकाशन 2005, पृ. 65,
10. ग्रेनविल ऑस्टिनः भारतीय संविधान राष्ट्र की आधारशिला, वाणी प्रकाशन 2017, पृ. 89,